

बनारसी तुमरी की परम्परा व तुमरी गायिकाएँ : एक अवलोकन

डॉ० ज्योति सिनहा,

पूर्व फेलो,

भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान,

राष्ट्रपति निवास शिमला, हिमाचल प्रदेश

संगीत का प्रयोजन सांसारिक चिन्ताओं में दबे हुए या थके हुए मानव को उन चिन्ताओं से मुक्त कराकर अलौकिक सुख की प्राप्ति कराना है। जिसमें यह गुण हो, उसे ही भलि-भाँति, गाया हुआ या संगीत (सम्यक् गीतम्) कहना चाहिए, अन्यथा वह कोलाहल मात्र है, भले ही वह कोई भी शैली या प्रकार हो। स्वर भाषा, ताल व मार्ग का आश्रय लेकर गीत मानव की भावना को व्यक्त करता है, वादन गीत का सहायक होता है और नृत्य उस भावना को मूर्त कर देता है। इसलिए गीत, वाद्य और नृत्य मिलकर 'संगीत' कहलाते हैं।¹ भारतीय संगीत का विकास एक लम्बे इतिहास क्रम को प्रस्तुत करता है। वैदिक काल से लेकर मध्यकाल एवं आधुनिक काल तक भारतीय संगीत न जाने कितनी गायन शैलियों, विविध प्रवृत्तियों एवं संस्कृतियों से अनुप्रेरित होता रहा है। भारत का शास्त्रीय संगीत धर्म तथा राज्य संरक्षण के दो चक्रों पर ही घूमता रहा है। दोनों की रूढ़ियों ने जब संगीत को भी क्रमशः रूढ़िगत बन्धनों में जकड़ना प्रारम्भ किया तो प्रतिक्रिया स्वरूप तुमरी गायन का जन्म हुआ।² बहुत प्राचीन समय से ही उत्तर भारत में कई विभिन्न गायन शैलियाँ प्रचलित रही हैं। जैसे— ध्रुवपद, धमार, ख्याल आदि। इन्हीं क्रम में 'तुमरी' भी एक प्रकार की गायन शैली है। उपशास्त्रीय संगीत के वर्ग में प्रथम स्थान तुमरी का है। मूलतः तुमकने-नाच के साथ जुड़ी यह शैली आज बहुत लोकप्रिय है। लखनऊ के दरबार से इसका प्रचार-प्रसार माना जाता है किन्तु इसका मूल स्रोत प्राचीन राग में मिलता है। (तुमरी नाम की

एक प्राचीन रागिनी है) शब्दों का मूल्य महत्व यहाँ बढ़ने के साथ ही शब्दों को श्रृंगारिक ढंग से सजाया जाना इसकी विशेषता है। सामान्य रूप से भैरवी, खमाज पीलू, काफी, गारा, तिलंग आदि रागों में तुमरियाँ गाई जाती हैं। शुद्धता को कम देखने के कारण 'मिश्र खमाज', 'मिश्र काफी', 'मिश्र पीलू' आदि रागों के नाम चलन में रहते हैं।

पं० विष्णु नारायण भातखण्डे जी ने तुमरी के संदर्भ में लिखा है कि— 'तुमरी एक क्षुद्र गीत माना जाता है तथा इसका प्रधान रस श्रृंगार होता है। शब्द रचना संक्षिप्त होती है। उत्तर भारत की ओर संगीत व्यवसायी स्त्रियाँ ही प्रायः तुमरियाँ गाती हैं। तुमरी का गायन क्षुद्र भले ही माना जाये, किन्तु यह अत्यन्त लोकप्रिय है, इसमें कोई संदेह नहीं।'³ इस संदर्भ में बनारस के पं० जालपा प्रसाद मिश्र का कहना है कि तुमरी गाते समय स्वर में माधुर्य, लोच और नृत्य का अनिवार्य अंग माना गया है। नृत्य और अभिनययुक्त इस संगीत को नृत्य संगीत अथवा अभिनय संगीत की संज्ञा दी जा सकती है। तुमरी के जिन भावों को एक नर्तक जैसे हाव-भाव से अदा करता है, उन्हीं भावों को हम वैसे ही गले से अदा करते हैं जो कि ज्यादा मुश्किल काम होता है।⁴ ऐतिहासिक दृष्टिकोण से तुमरी की परम्परा पर ध्यान दे तो पाते हैं कि भारतीय इतिहास में गीत के साथ नृत्य की परम्परा रही है। वेश्याओं (इन्हें 'मंगलामुखी' की भी संज्ञा प्राप्त है जो इनके द्वारा मांगलिक अवसरों पर उपस्थिति का द्योतक है)

तवायफों, गौनिहारिनों द्वारा आरम्भ में नृत्य के साथ तुमरियां गाई जाती रही है।⁵

श्री सुदामा प्रसाद दूबे के अनुसार— भावाभिनय तुमरी की सूक्ष्म और मार्मिक शक्ति है। तुमरी में नीहित विभिन्न भावों का सूक्ष्म प्रतिबिम्ब गायन के शब्दोंच्चारण और स्वरोच्चारण के साथ—साथ उसके मुखमंडल पर होना ही उसकी भावुकता का द्योतक है।⁶ अत्यन्त साधारण जन के निकटवर्ती होते हुए भी विशिष्ट जन समूह इसके आकर्षण एवं मोहक छवि से वंचित नहीं रह सका।

अवश्य ही शनैः शनैः संस्कारित एवं परिष्कृत होकर तत्कालिन तुमरी उच्चकुलीन सम्प्रदायों में पहुँची और चूँकि शास्त्र की पूर्ण नियमबद्धता अथवा कठोरता का अभाव रहा, अतः इसे पूर्ण शास्त्रीय तो नहीं अपितु उपशास्त्रीय संज्ञा प्राप्त हो सकी परन्तु तुमरी का सम्बन्ध लोक व शास्त्र दोनों से समान रूप से बना रहा।⁷

ग्रंथों के अध्ययन काल में तुमरी की उत्पत्ति एवं इतिहास का तो भास होता है परन्तु तुमरी गायकों अथवा उनके घरानों का उल्लेख नहीं है। राजदरबारों में भी इसके गायन का वर्णन नहीं होने से स्पष्ट होता है कि तुमरी निम्न स्तरीय अथवा छोटे समुदायों में ही विकसित थी, जिसके लक्षण स्वरूप तुमरी तवायफों/वेश्याओं/ गौनिहारिनों तक सीमित रही, जिसे घरानेदार संगीतज्ञ हेय दृष्टि से देखते रहे और उसे दीर्घकाल तक क्षुद्र प्रकृति के संगीत की संज्ञा प्राप्त होती रही। अपने एक लेख में तुमरी के संदर्भ में बताते हुए आचार्य बृहस्पति ने कहा है कि 'सन् 1945-46 ई. हमने लखनऊ रेडियों से प्रसारित एक वार्ता में कहा था कि 'तुम' तुमकने का द्योतक है और 'री' अन्तरंग सखी से अपने अन्तर की बात कहने का। तुमरी का विषय नायिका के अन्तर की असंख्य भाव लहरियों का चित्रण है...।⁸

तुमरी के संदर्भ में श्री जी०एच० रानाडे लिखते हैं— 'Thumari is another interesting form of musical composition, A majority of such songs employ scales which are usually met within the folk songs and employ as a rule, notes from the very fine consonances which principally figure in folk music.⁹ अठारहवीं सदी में तुमरी को कोई पुख्ता प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त हो पाई थी। पुनरपि इस सदी के उत्तरार्ध में यह स्थापित होने लगी थी तभी तो सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ गुलाम राजा सितार पर तीन ताल मध्यलय तुमरियां प्रस्तुत करने लगे थे, जिससे नवाबों को प्रसन्नता हो।' अवध के दरबार में इस सदी के अन्त और उन्नीसवीं सदी का आरम्भ तुमरी के लिए स्वर्णिम प्रभात बन गया और तुमरी के प्रश्रयदाता की संज्ञा वाजिद अली शाह को प्राप्त है जो स्वयं संगीत एवं नाट्य के प्रेमी एवं ज्ञाता थे।

अठारहवीं शताब्दी के मध्य में मुगल साम्राज्य के पतन के बाद नये-नये राजा व सुबेदार स्वतन्त्र हो गये तथा दिल्ली के राज्य के शक्ति क्षीण हो गयी। ऐसे में गायक, वादक, दूसरे दरबारों में आश्रय व शरण ढूँढने लगे। ऐसे में संगीतज्ञों का रुझान अन्य शैलियों की ओर गया जो उस समय की आवश्यकता थी। प्राचीन संगीत के महारथी जहाँ जीविकोपार्जन की समस्या से निश्चित होकर दिल्ली व अन्य दरबारों की कृपा पर रियाज व साधना में ही निमग्न रहते थे, उनके समक्ष भी जीविकोपार्जन की समस्या खड़ी हो गयी। बनारस, लखनऊ, रामपुर, ग्वालियर, वेतिया आदि स्थानों पर इन्हें जाना पड़ा। उसी समय संगीत के व्यापक क्षेत्र में तुमरी ऐसी नवीन गायन शैली का प्रवेश हो चुका था। कदर पिया, सदर पिया और सनद पिया ऐसे तुमरी गायक लखनऊ में नवाब वाजिद अली शाह के दरबार में नियुक्त हो गये थे। लखनऊ की तुमरी के साथ लखनऊ के कथक नाच भी संगीत के मैदान में आ गया था। वाजिद अली शाह के दरबार में

ठाकुर प्रसाद भी, जो कथक नृत्य के जन्मदाता और प्रवर्तक माने जाते हैं, नियुक्त थे और वह नवाब साहब के नाच में पूज्य गुरु थे। इन्हीं के प्रतिभाशाली पुत्र बिन्दादीन जी थे। तुमरी और कथक नाच का चोली- दामन का साथ था और यह हमारे आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत की दो नयी, शैलियाँ थी जिन्होंने आगे चलकर बड़ी उन्नति की।¹⁰

‘वाजिद अली शाह का कार्य नृत्य-नाट्य तक ही सीमित नहीं रहा, उन्होंने तुमरी में भावभिव्यंजना के लिए भाषा के छोटे-छोटे वाक्यांशों को लेकर विविध स्वर-संयोजन से भावभिव्यक्ति को विविधमुखी, फिर भी निर्दिष्ट करने की चेष्टा की। इस प्रकार कहन तुमरी का जन्म हुआ। इस समय वाजिद अली शाह ने अपने को ‘अख्तर पिया’ नाम से परिचित कराया। (मिर्जा कादर ने बहुत पहले ही अपना नाम कदर पिया रखा था) सन् 1841-42 में यह ‘कहन तुमरी’ बनारस और अन्यान्य पूर्वी अंचलों में काफी प्रचलित हुई थी।¹¹ कहन तुमरी’ आज भी पुराने एवं बुजुर्ग गायकों द्वारा सुनने को मिलती है परन्तु उन धरोहरों के संरक्षण की आवश्यकता है। तुमरी के विकास एवं प्रसार में तीन प्रमुख स्तम्भ पुरुष माने जा सकते हैं- नवाब वाजिद अली शाह, उस्ताद सादिक अली खाँ एवं बिन्दादीन महाराज। इसके अतिरिक्त मौजुद्दीन खाँ, भैया गनपत राव आदि के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। सादिक अली खाँ से ही ग्वालियर के मशहूर हारमोनियम वादक भईया गनपत राव ने तुमरी सीखी तथा 1918-20 तक इनका नाम पूरे भारत में फैल गया। तुमरी के बेहतरीन गायक मौजुद्दीन खाँ इन्हीं के शिष्य थे। मौजुद्दीन खाँ जैसा तुमरी गाने वाला कोई नहीं था। दर्जनों गाने वालियाँ इनकी शिष्या हो गयी थी जिनमें कलकत्ते की गौहर जान व नूरजहाँ का नाम भी था। मौजुद्दीन खाँ की गाई तुमरी- ‘सांवरिया ने जाई द्वारा बाजूबन्द खुल-खुल जाये, अभी भी

गायी जाती है। लखनऊ के तुमरी गायकों ने बोल पर ही सबसे अधिक जोर दिया ‘कलायुक्त, बोल बनाव यही इस शैली की विशेषता रही। तुमरी का निराला व विशेष आकर्षण बोल बनाव में है जिसके लिए भावुक उच्चारण तथा शब्दों की सही पुकार आवश्यक है सहृदय व भावुक कलाकार ही तुमरी को गा सकता है।

जिस तरह सदारंग की बदौलत ख्याल गायिकी का जन्म हुआ, उसी प्रकार भईया गनपत राव की बदौलत ‘तुमरी’ गाना हर दिल अजीज हुआ। मौजुद्दीन खाँ साहब इन्हीं के शिष्य थे। बनारस की बड़ी मोती बाई तुमरी में मौजुद्दीन खाँ की ही शिष्या रही थी तथा बड़ी मोती बाई को भैया गनपत राव की परम्परा का प्रतीक कहा जाना चाहिए। आज तुमरी गायन में जिन्हें प्रसिद्धि प्राप्त है, वे हैं- शोभा गुर्तू, निर्मला अरुण, लक्ष्मी शंकर, गिरिजा देवी, सविता देवी, रीता गांगुली, पूर्णिमा चौधरी, नैना देवी, शुभा मुद्गल, माला श्री तथा पुरुष गायकों में छन्नू लाल मिश्र, धर्मनाथ मिश्र, भोलानाथ मिश्र, महादेव प्रसाद, अजय पोहनकर, पं० चन्द्रशेखर व्यास आदि।

आधुनिक तुमरी का विकास अवध के दरबार में हुआ। इसके लिए दरबार का विलासमय वातावरण तो पोषक हुआ ही साथ ही रीतिकालीन काव्य का भी प्रभाव रहा। नृत्य के तुमकने का भाव इसमें होने के कारण इसका नामकरण तुमरी हुआ। गीत गाने के साथ विभिन्न अंगों के द्वारा किये जाने वाले अभिनय से उन भावों को प्रगट करना तुमरी के लिए आवश्यक था। इसी कारण नर्तकियों एवं वेश्याओं में इसका प्रचार अधिक हुआ। समय के साथ-साथ कला में भी लोक रुचि के अनुसार परिवर्तन होता है एवं कला में वृद्धि होती है। ध्रुवपद से धमार ख्याल, तुमरी, दादरा, टप्पा इत्यादि शैलियाँ इस परिवर्तन का ही परिणाम रही। शब्दानुकूल अर्थ रूप से ही स्पष्ट है कि तुमरी में नृत्य और अभिनय का सम्बन्ध स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है। तुमरी गायन के

साथ नृत्य की परम्परा आज भी है। तवायफें खड़ी होकर अभिनय के साथ ही तुमरियां प्रस्तुत करती थी। इन तथ्यों की पुष्टि अनेक ग्रंथों से हो जाती है।¹²

तुमरी में गीत महत्व रखता है। अधिकतर श्रृंगार रस भावों को लेकर तुमरियां गाई जाती है। तुमरी में कला पक्ष प्रबल है। तुमरी की भाषा, उसके विषय, उसकी प्रकृति के अनुकूल उस प्रदेश की लोक भावों में से हैं, जहाँ तुमरी उपजी है। श्रृंगारिक शब्दावली और गाने के ढंग के कारण मुख्यतया तुमरी स्त्रियों में प्रचलित हुई। स्वाभाविक रूप से ऐसी रचनायें विलासी राजा पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के मुख से सुनना चाहते थे तभी कालान्तर में यह शैली विशेष प्रकार की स्त्रियों में ही प्रचलित होकर रह गई जो गणिका, वेश्या, पातुर, नर्तकी आदि कहलाती थी।¹³ श्रृंगार प्रधान व लोक संगीत के अत्यन्त निकट होने के कारण तुमरी के लिए लोक धुनों के निकटवर्ती व श्रृंगारिक अभिव्यक्ति में सहायक राग ही उपयुक्त होते हैं यथा—पीलू, खमाज, भैरवी, देश, तिलक कामोद, तिलंग, गारा, सिंध, बिहारी इत्यादि। भाव प्रदर्शन के लिए तुमरी अत्यन्त उपयुक्त माध्यम है तथा भाव, प्रदर्शन के दृष्टिकोण से यह नृत्य के निकट पहुँच जाती है।

इस शैली में एक ओर तो लोकगीतों के हृदय पक्ष का प्राबल्य बना रहा तो दूसरी ओर गायकों के चमत्कार पक्ष का समन्वय हुआ। भारतीय संगीत के मीठे व सरल राग यथा—भैरवी, खमाज, पीलू, तिलंग, धानी, झिंझोटी, पहाड़ी आदि राग तुमरी के लिए उपयुक्त हैं। इन रागों की प्रकृति सरल, रोचक, मधुर एवं चंचल है। तुमरी गीतों की शब्द योजना अधिकतर श्रृंगारपरक है। इसके विषय विविध हैं। कही नर—नारी के लौकिक प्रेम, भक्ति तो कही सूफी व रहस्यमार्गीय सन्तों के अलौकिक ईश्वरीय प्रेम की अभिव्यक्ति मिलती है। वस्तुतः तुमरी दो प्रकार से गाई जाती है— 1. बोल बनाव या बोल आलाप

की तुमरी, 2. बोल बांट या बंदिश की तुमरी। बोल बनाव की तुमरियां विलम्बित लय तथा बोल बांट की तुमरी मध्य लय में गाई जाती है। बोल बनाव की तुमरी भाव प्रधान है तो बोल बांट की तुमरी लय प्रधान। बोल बनाव की तुमरियां भी दो अंगों में विभक्त है 1. पूरब अंग 2. पंजाब अंग।

पूरब अंग की तुमरियां भारत के पूर्वी अर्थात् उत्तर प्रदेश के पूर्वी क्षेत्र और बिहार में प्रसिद्ध है। स्वप्रकृत्यानुरूप लोक संगीत अर्थात् कजरी, चैती, पूर्वी आदि का पूरब अंग की तुमरियों पर प्रत्यक्ष प्रभाव परिलक्षित होता है। पूरब अंग की दो शैलियाँ— लखनऊ और बनारस नाम से विख्यात हैं। लखनऊ शैली की तुमरी के बोल ब्रज भाषा एवं अवध की स्थानीय बोली का मिश्रित रूप है, जिसे कदर पिया ने 'भाखा' की संज्ञा दी है। इसमें कहीं—कहीं उर्दू का भी पूट देखने को मिलता है। लखनऊ टप्पा का भी क्षेत्र रहा है। अतः तुमरियों पर भी टप्पा का स्पष्ट छाप दृष्टिगोचर होता है। बोलो को नजाकत और भावुकता से कहना ही लखनऊ की तुमरी की जान है।¹⁴

उत्तर प्रदेश में लखनऊ तुमरी का महत्व पूर्ण केन्द्र रहा। पूरब अंग की तुमरी में गायन शिल्प की सूक्ष्मता, कुशलता, पदों के बोलों का अभिजात्य प्रदर्शन, उर्दू व ब्रज मिश्रित भाषा की चुलबुलाहट, शास्त्रीय रागों से मोह और ख्याल गायकी से तुमरी अंग की विशिष्टता प्रदर्शित करना, लखनऊ के तुमरी गायकों का अपना सौष्टव था। बंदिश की तुमरी या बोल बाट की तुमरी के लिए लखनऊ के बिन्दादीन महाराज, कालकादीन जी महाराज और फर्रुखाबाद के ललन पिया सिद्धहस्त थे। तुमरी गायक व रचयिता अपने नाम के उपनाम में 'पिया' शब्द जोड़ते थे। जैसे—सुधर पिया, सनदपिया, ललन पिया, चांद पिया, चतुर पिया, मौज पिया, अहमद पिया, दरस पिया, अख्तर पिया आदि। तुमरी का दूसरा अंग पंजाबी अंग के नाम से प्रसिद्ध है। इस

अंग की तुमरी का मूल पंजाब का लोक संगीत महिया पहाड़ी आदि धूनें हैं। पदों के बीच में 'ताने' खटकों का प्रयोग पंजाबी अंग की अपनी विशेषता है। पूरब की तुमरी यानि लखनऊ और बनारस की तुमरी। पूरब की तुमरी लखनऊ में पैदा हुई। लखनऊ के नवाब सादिक अली खां ही इसके आविष्कारक थे और इन्होंने ही इन नयी शैली का सबसे पहले प्रचार किया कथक नाच व लखनऊ की तुमरी का साथ-साथ उत्थान हुआ और बहुत समय तक इन दोनों का साथ भी रहा। लखनऊ के बिन्दादीन जिनको इस पिछले युग में कथक नृत्य का सर्वश्रेष्ठ अन्वेषक व नर्तक माना जाता है। बहुत सी लय, बोल की तुमरियों की रचना कर गये हैं जिनमें बिंदा कहते शब्द आये हैं। लखनऊ की तुमरी ठहरी हुई लय में होती है और प्रायः पंजाबी ठेके, धीमें अथवा चांचर ताल में गाई जाती है। उसके बोल भी सीधे-सादे होते हैं और कानो को बहुत अच्छे लगते हैं जैसे- 'सांची कहो मोसे बतियां गवाई रतिया, आंगन में मत सो अथवा बाबुल मोरा नईहर छूटों जाये' आदि मशहूर है। पूर्वी अंग की तुमरी को अत्यधिक लोकप्रिय बनाने में भईया गनपत राव, मौजुददीन खां, प्यारे साहिब, जोराबाई, जानकीबाई बड़ी मोती बाई, रसूलन बाई, विद्याधरी बाई, सिद्धेश्वरी देवी और बेगम अख्तर का विशेष योगदान है।¹⁵ बनारस में तुमरी ने लोकतत्वों को ही विशुद्ध रूप से पहली बार अपनाया। चैती, कजरी, होली, सावनी आदि लोक प्रचलित धुने तुमरी गायन का महत्वपूर्ण अंग बन गई।

"In Northern India a particular class of woman used to sing Thumari with dance and acting which used to project romantic and mood. This was done by them mainly to entertain the aristocracy and earn their living. In course of time Thumari shed the dancing part and developed as a full fledged singing form and later on several styles of Thumari singing developed and its earned a place of respect as

an art form."¹⁶ नृत्य गीत होने के कारण तुमरी का कथक नृत्य से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध और उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में कथक नृत्य भी उत्तरोत्तर उन्नत हुई। तत्कालीन महाराज बिन्दादीन ठाकुर प्रसाद जी के ही पुत्र थे जिन्होंने लगभग पन्द्रह सौ तुमरियों की रचना की तथा अनेक तवायफों एवं गायिकाओं को तुमरी की शिक्षा दी। इनमें जौहर बाई और गौहर जान दो प्रमुख नाम हैं। महाराज बिन्दादीन की तुमरियां आज कुछ ध्वनि-मुद्रिकाओं में उपलब्ध है।¹⁷

उत्तर भारत के पूर्वी भाग में स्थित बनारस नगर प्राचीन काल से ही देश का एक सुविख्यात धार्मिक स्थान होने के साथ-साथ सांस्कृतिक गतिविधियों का भी प्रमुख केन्द्र रहा है। यहाँ के संगीतज्ञ गायन, वादन और नर्तन के लिए प्राचीन युग से ही बड़े प्रसिद्ध रहे हैं जिनका पता जातक कथाओं, जैन धर्म ग्रंथों, चर्तुमाणी और कुट्टनीतम इत्यादि ग्रंथों से चलता है। बनारसी तुमरी की उत्पत्ति एवं विकास के संदर्भ में डा० शतुधन शुक्ला ने लिखा है कि "बनारस के संगीतज्ञों में बहुत समय से कथक जाति के अनेक गायक-वादक और नर्तक बसे हुए हैं जो संगीत प्रदर्शन करने के साथ-साथ वहाँ की वेश्याओं को भी (गणिकाओं आदि) गान एवं नृत्याभिनय की शिक्षा देते आये हैं। इन कथकों के अनेक परिवारों से महाराज बिन्दादीन और उनके परिवार के लोगों की रिश्तेदारियां होने के कारण बनारस के अनेक लोगों ने एवं गणिका शिष्याओं ने उनसे तुमरी गान एवं कथक नृत्य की शिक्षा ग्रहण की। बिन्दादीन के सगे छोटे भाई कालिका प्रसाद ने भी बनारस में रहकर अपने शिष्य-शिष्याओं को तुमरी गान की शिक्षा दी। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि उस्ताद सादिक अली खां, भैया गनपत राव, जगदीप मिश्र, मौजुददीन खां एवं बिन्दादीन महाराज तथा उनके परिवार एवं शिष्य शिष्याओं द्वारा बनारस में तुमरी गान का प्रचलन

हुआ और इन्हीं सभी के योगदान से कालान्तर में तुमरी के बनारसी शैली के विकास की नींव पड़ी।¹⁸ बनारसी तुमरी पर उत्तर भारत के पूर्वी प्रदेशों की बोलियों, लोकगीतों एवं लोकधुनों का बहुत प्रभाव पड़ा। अतएव आगे चलकर बनारस में बोल-बनाव की तुमरी के ऐसे स्वरूप का विकास हुआ जिस पर ब्रजभाषा के साथ-साथ अबधी, भोजपुरी एवं मगही आदि बोलियों एवं पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार प्रचलित चैती, घाटों, कजरी, सावन, झूमर, बिरहा, पूर्वी आदि लोकगीतों एवं धुनों का भी काफी प्रभाव पड़ा। बनारस की तुमरी का यह स्वरूप मुख्यतः गान प्रधान एवं बोल-बनाव का रहा एवं आगे चलकर यही 'बनारसी तुमरी' को नाम से प्रसिद्ध हुआ। पूरब अंग की तुमरियों की दो शाखाओं 'लखनवी एवं बनारसी' में 'बनारसी' तुमरी ही पूरब अंग की तुमरी के रूप में सर्वत्र प्रचार-प्रसार में है। यद्यपि बनारसी तुमरी के प्रचार-प्रसार में अनेकों गायकों ने भी अपना योगदान दिया जैसे आजमगढ़ के जगदीप मिश्र, बनारस के मौजूददीन खां, मिठाई लाल, रामसेवक, दरगाही जी, सियाजी, बड़े रामदास जी, धीरेन बाबु, श्रीचंद मिश्र महादेव मिश्र, इलाहाबाद के पं० भोलानाथ भट्ट आदि। परन्तु बनारसी तुमरी को स्थापित करने में महिला गायिकाओं का जो योगदान रहा वह अप्रतिम है। पुरानी गायिकाओं में बनारस की हुस्ना, मैना, विद्याधरी देवी, राजेश्वरी देवी, चम्पा बाई, शिवकुंअरी, भागीरथी, काशी बाई, रसुलन, बडे मुनीर उर्फ मुन्नर, कमलेश्वरी दुर्गेश, बिट्टों, श्यामा इत्यादि। इनके अतिरिक्त पुरानी परम्परा की गायिकाओं में श्रीमति बड़ी मोती बाई, श्रीमति रसुलन बाई तथा श्रीमति सिद्धेश्वरी देवी, गिरिजा देवी व मानिक वर्मा उल्लेखनीय है। बनारसी तुमरी की विशेषता यह है कि यह उत्तर प्रदेश के पूर्वी क्षेत्र की लोक संस्कृति से अधिक प्रभावित है। इसमें बोलबनाव करते समय बोलों के 'कहन' अर्थात् 'लहजे' में पूर्वी बोलियों के विशिष्ट उच्चारण की मिठास के साथ-साथ स्वर सन्निवेशों के प्रयोग में पूर्वी

लोकधुनों की सादगी एवं सरलता के दर्शन होते हैं। बोल-बनाव में नीहित भावों के अनुरूप स्वरों का प्रयोग तथा मनोभावों की अभिव्यक्ति के लिए 'काकू' प्रयोग विशेष रूप से होता है। उत्तर प्रदेश में वाराणसी तुमरी का एक दूसरा केन्द्र बना। चैती, कजरी, सावनी, होली, आदि लोक प्रचलित धुनें तुमरी गायन का महत्वपूर्ण अंग बन गईं। बनारस में तुमरी ने लोक तत्वों को ही विशुद्ध रूप से पहली बार अपनाया। तुमरी ने शास्त्रीय संगीत को बन्धनों से मुक्ति दिलाकर लोक मानस के निकट खींचा।

'काशी कहे या बनारस, आज पाश्चात्य संस्कृति की आंधी में भी अपने मिट्टी की सुगन्ध, अपनी कला, संस्कृति और संस्कार के लिए अब भी जीवन्त बना हुआ है। घंटा-घडियाल तो सभी स्थानों पर बजते हैं, किन्तु यहां जब बजते हैं तो उसकी अपनी एक अलग मिठास होती है' ये उद्गार हैं- श्री कमल नयन जी के।¹⁹ बनारस में पुराने रईसों ने संगीत को पूरा-पूरा संरक्षण प्रदान किया। इस संदर्भ बनारस के पुराने रईस व संगीत प्रेमी श्री किशोरीरमण जी का कहना है कि- भारतीय संगीत को इस देश में राजाओं, रईसों व जमींदारों ने ही संरक्षण देकर सुरक्षित रखा था....। हिन्दु रईसों के यहाँ बाग-बगीचों में महफिलें सजती थी... तुमरी, दादरा, टप्पा और चैती का जो दौर चलता तो सुबह भैरवी होने के बाद ही समाप्त होता था।²⁰ सारनाथ, मैमूरगंज, दुर्गाकुण्ड के आस-पास के क्षेत्रों में रईसों के बाग-बगीचे होते थे, जिसमें सावन के दिनों में झूला पड़ता था। गायिकाओं के झूले पर ही बैठकर झूमर का आनन्द लेते थे...। 19वीं शताब्दी के अन्त तक बनारस की मौज-मस्ती व रहन-सहन निराली थी... कोठे पर बैठकर दो रूपये में मुजरा सुना जा सकता था.. आर्थिक दृष्टि से कमजोर लोग पान की दुकान पर बैठकर दो बीड़ा पान मुंह में दबाये तुमरी, टप्पा आदि का आनन्द लूटते थे....। रईस गायन वादन के

शौकीन जरूर होते थे, किन्तु वे कोठों पर नहीं जाते थे.... उनके बगीचों में ही महफिलें सजती थी... उत्सव के अवसर पर रइसों के घर आंगन में महफिल सजाई जाती थी... महफिलों में तवायफें नाचती नहीं थी बल्कि तानपूरे या सितार पर गाती थी। रईस आमन्त्रित गायिकाओं को अर्शफियां इनाम में देते थे।²¹ बुढ़वा मंगल का मेला बनारस का एक अनोखा मेला होता था। पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव में धीरे-धीरे इन मेलों की परम्परा भी क्षीण होती गयी। काशी नरेश महाराज ईश्वरी नारायण सिंह के कार्यकाल तक यह मेला अपनी पूरी जवानी पर था। इस अवसर पर गंगा का घाट नावों और बजरो से पाट दिया जाता था। इन बजरो पर काशी की सुविख्यात गणिकाओं का गायन-वादन होता था..। बजरो पर लगी महफिलों में बड़ी मैना, छोटी मैना, राजेश्वरी, शिवकुंअर, बड़ी माती आदि नामवर गायिकाओं का गाना होता था। इन स्वर कोकिलों के गुंजन से वातावरण गूँज उठता था...।²² (बनारस तेरे रंग हजार, लेखक, कमल नयन, भारत बुक सेन्टर, अशोक मार्ग लखनऊ, ...) तुमरी को 'सईया-गुईया' वाला गाना कहकर जो लोग इसे तुच्छ बताते हैं, वह शायद भूलते हैं कि विरह, पीड़ा, वात्सल्य, श्रृंगार आदि मनोभावों का निरूपण तुमरी द्वारा बड़ा मर्मस्पर्शी होता है और यही वजह है कि जब ध्रुवपद व ख्याल रस व भाव से च्युत हो गये तो रस भरी 'तुमरी' का आविर्भाव हुआ। सम्भवतः तुमरी जनसाधारण की सामाजिक/लोक संस्कृति के अत्यन्त निकट थी। लोक शैली अत्यन्त प्राकृतिक तत्व है जिसका समग्र प्रभाव तुमरी पर विद्यमान है।

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की शैलियों में सुन्दरता व्यक्त करने के लिए तुमरी को ही सबसे अधिक सफलता प्राप्त हुई है। तुमरी गायन का क्षेत्र प्रारम्भ में स्वतन्त्र रहा जो आज थोड़ा संकुचित हो गया अर्थात् प्रारम्भ में गायक एक सम्पूर्ण गायकी के रूप में प्रस्तुत करते थे जिसमें

आज थोड़ी कमी आई है अर्थात् गायक अपनी प्रस्तुति का समापन तुमरी को एक छोटी चीज अथवा क्षुद्र प्रकृति का समझ कर करते हैं। यद्यपि आज भी स्वतन्त्र तुमरी गायक-गायिकाएं हैं परन्तु उनकी संख्या अत्यन्त कम है।

यह देखा गया है कि बहुत से कुशल ख्याल गायक तुमरी को निम्न श्रेणी की एक गिरी हुई शैली समझते हैं और उसे गाने में अपना अपमान समझते हैं। न मालूम इस भ्रांति का जन्म कैसे हुआ। लोग तराने को तो शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत मानते हैं परन्तु तुमरी का बहिष्कार करते हैं। गायक तराने की दिर-दिर को तो कला का एक चमत्कार मानते हैं परन्तु तुमरी के बोल-बनाव को बच्चों का खिलवाड़ समझते हैं।²³ बनारस की तुमरी व दादरे पर लोक संगीत का बहुत बड़ा जबरदस्त प्रभाव पड़ा है और लोक गीतों की स्वतः प्रवृत्ति भी इन लोकप्रिय शैलियों में प्रवेश कर गयी है। अतः बनारस की तुमरी में लोक संगीत का भी पुट है। बनारस व मिर्जापुर की चैती कजरी ने भी इस तुमरी को प्रभावित किया है। बनारस की तुमरी में उस क्षेत्र की बोलचाल, वहाँ की भाषा, और वहाँ के लोकगीतों की तर्जो व धुनों का समावेश है। तुमरी के स्वरों के लगाव में भी एक तरह का अल्हड़पन और एक तरह की स्वाभाविक स्फूर्ति अथवा छेड़छाड़ होती है जो अधिकतर बनारस की तुमरी में ही पाई जाती है और जिसमें लोकगीत की धूने भी सुनाई पड़ती है। बनारस-शैली की तुमरी जैसा कि नाम से ही अवगत कराता है कि यह भी अवश्य ही नामानुरूप, स्वनामधन्य स्थान से सम्बद्ध है। इस शैली की तुमरियों पर बनारस एवं बिहार के लोक संगीत व चैती, कजरी, पूरबी आदि का स्पष्ट प्रभाव है। इस शैली में बोलों के बनाव का एक विशेष रूप है जो तुमरी की रचना के अनुरूप रस एवं भावों का सन्निवेश कर विभिन्न काकु-प्रयोगों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है जो अत्यन्त ही मधुर एवं हृदयस्पर्शी है। एक विशेष प्रकार के बोलों के कहने की प्रक्रिया के

कारण ही बनारस की तुमरियों में इसे 'कहन तुमरी' भी कहा गया। गिरिजा देवी बोलो के कहने का ढंग निराला है— 'मैं दोरूखी तुमरी गाती हूँ। दोरूखी तुमरी यानी शब्द और संगीत दोनो से परिपूर्ण'²⁴ बनारस शैली की तुमरियों में काकु का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है।

आज वर्तमान में शिक्षा, रोजगार, समानता स्वतन्त्रता आदि के अधिकारों ने नारियों को एक नये मुकाम पर खड़ा किया है। आज जो स्थिति है, जो बदलाव है वह कुछ दशक पहले नहीं थी। निःसन्देह आज भी स्त्रियों के समक्ष कड़ी चुनौतियाँ हैं परन्तु उन चुनौतियों से जुझने के लिए उनके पास शिक्षा है, आर्थिक सुदृढ़ता है और आत्म निर्भरता है जो उन्हें किसी मुद्दे पर निर्णय लेने अथवा जीवन की राह को चुनने में बल प्रदान करती है। पुरुषों की भी सुधरी हुई मानसिकता ने उन्हें आगे बढ़ने का मौका प्रदान किया है। मानसिक रूप से वे भले ही इस स्वतन्त्रता के पक्ष में नहीं रहे परन्तु आर्थिक असंतुलन एवं सुविधा युक्त जीवन की चाह ने उन्हें स्त्रियों के प्रति उदार दृष्टिकोण को बनाने में, उन्हें आत्म निर्भर साक्षर व घर की दहलीज से बाहर भेजने में सहयोग दिया। परन्तु यह स्थिति एक आम स्त्री की नहीं बल्कि एक विशेष वर्ग की स्त्रियों तक ही सीमित रही। अन्य स्त्रियों की स्थिति में बहुत परिवर्तन नहीं हुआ, होगा पर समय लगेगा। हम यदि स्वतन्त्रतापूर्व की अवस्था का अध्ययन करें तो हमें बेहद आश्चर्य होता है कि उस समय भी सामाजिक चुनौतियों को स्वीकार कर समाज में अपना विशिष्ट स्थान बनाने में महिलायें पीछे नहीं रही। जबकि तत्कालीन समाज, विविध कुरीतियों, अंधविश्वास, सामाजिक पारिवारिक, मान्यताओं व वर्जनाओं से बंधा था। स्त्रियों को समाज परिवार, धर्म समुदाय, वर्ग माहौल, परिवेश और यहाँ तक कि एक स्त्री होने का दंश भी झेलना पड़ता था। परन्तु संगीत के क्षेत्र से जुड़ी महिला गायिकाओं ने सभी चुनौतियों को स्वीकारते हुए, परिवार व समाज की

मर्यादाओं की रक्षा करते हुए अपने परीश्रम रियाज साधना व कला प्रवीणता से संगीत के क्षेत्र में अपना अमूल्य योगदान दिया, एक उपलब्धि हासिल की, एक कीर्तिमान स्थापित किया। ऐसी महिला गायिकायें आज उभरती हुई युवा गायिकाओं के लिए एक मिसाल है, प्रेरणास्रोत है जिन्होंने सामाजिक व पारिवारिक जीवन में सामंजस्य बैठाते हुए अपनी हुनर व कला का सदुपयोग किया तथा भारतीय संगीत के भंडार को समृद्ध किया। इस बात को समाज के समक्ष रखने व आदर्श प्रस्तुत करने का कार्य इस अध्ययन के माध्यम से रखा जायेगा, साथ ही तत्कालीन परिस्थिति में नारी की स्थिति का आंकलन, वर्तमान संदर्भ में उसकी आवश्यकता पर भी चर्चा होगी। आज स्त्री विमर्श जोरो पर है ऐसे में कला के क्षेत्र में स्थापित, विशेष रूप से गायन के क्षेत्र में अपना योगदान व वर्चस्व स्थापित करने वाली महिलाओं पर कार्य अनुसंधान कम हुए हैं, अतः इस अध्ययन के माध्यम से उन्हें वैश्विक पटल पर लाना, इस अध्ययन का उद्देश्य भी है। गायकी के क्षेत्र से जुड़ी महिलाओं को भी रेखांकित करने की, अपील करने की जरूरत है जो अनुकूल व प्रतिकूल परिस्थितियों में भी कला की साधना अनवरत रूप से करती रही। आम जनमानस को उनके जीवन से सीख लेने की आवश्यकता है, उन्हें सोचना पड़ेगा कि किस प्रकार इन गायिकाओं ने पारिवारिक सामाजिक वर्जनाओं को स्वीकार करते हुए कला को इस मुकाम पर पहुँचाया। पुरुषों के वर्चस्व के साथ स्वयं को स्थापित कर पाना उनके लिए कितना मुश्किल रहा होगा ? वर्ग भेद वातावरण आदि से सामंजस्य बिठाना और आगे बढ़ना कितना दुष्कर रहा होगा, पर उन्होंने अपने अस्तित्व की उत्कृष्टता व सर्वोच्च स्थिति को भी स्थापित किया। समाज के उद्भव से आज तक समाज में किसी न किसी रूप में असमानता अवश्य रही है चाहें उसका आधार नस्ल, जाति या वर्ग कोई भी रहा हो। आज नारी ने विभिन्न कार्य क्षेत्र में

पर्दापण अवश्य किया है किन्तु न तो वह संस्कारों का मोह छोड़ पाई है, न ही परम्परागत इमेज को तोड़ पाई है और पुरुष प्रधान समाज में पुरुष भी अपने को आश्रयदाता के अहम से मुक्त नहीं कर पाया है।

तमाम सामाजिक बंधियों का निर्वहन करते हुए भी अनेक महिलाओं ने जीवन में कुछ बेहतर करने सोचने उन्हें उच्च मुकाम पर पहुँचाया। उन्होंने अपने को जीवन और जगत् की व्यापक चुनौतियों से जोड़ा। यद्यपि सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में महिलाओं ने अपना कदम बढ़ाया परन्तु संगीत के क्षेत्र में पारिवारिक, सामाजिक दायित्वों का निर्वहन करते हुए जिन महिला गायिकाओं ने अपने रियाज साधना, लगन-परिश्रम से जो स्थान बनाया वह निःसंदेह प्रेरणीय है, वन्दनीय है। क्योंकि परिवार में रहते हुए प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए, लीपने-पोतने से लेकर चुल्हा-चौका करते हुए संगीत साधना करना श्रम साध्य है।

'दुमरी-दादरा' जैसी ओछी और घृणित समझी जाने वाली गान शैलियों को इन गायिकाओं ने जिस ऊँचे मुकाम पर पहुँचाया वह साधना कौशल इनकी अटूट रियाज, समर्पण भाव, तालीम की निशानी पेश करती है। पेशेवर होते हुए भी व्यवसायजनिक ओछेपन और दुर्भावनाओं से परे रही और यही है कला में उनकी उत्कृष्टता और गहरी पैठ का राज। दुमरी गाने में नियम बद्धता व शास्त्रीय आचार-विचार का जैसे निर्वाह ये करती, उसे देख सुनकर दंग रह जाना पड़ता था। 'रस के भरे तोरे नैन...' गाकर सिद्धेश्वरी देवी, 'फूलगंदवा न मारो मोका लगत.., करेजवा में चोट...' गाकर रसूलन बाई और 'कोयलिया मत कर पुकार...., गाकर अख्तरी बाई हमेशा-हमेशा के लिए इन्हें जिन्दा कर गईं। रसूलन बाई की दुमरी (पीलू) आंगन से मत सो..... तथा जाग परी मैं तो पिया के जगाये... हर जलसे की फरमाईश रहती थी। पुरानी उच्चस्तरीय

गायिकाओं में गौहर जान, मुश्तरी बाई, डेला बाई जोहरा बाई, केसर बाई, अख्तरी बाई, रसूलन बाई आदि का नाम अग्रणी है। दुमरी और दादरा जितने मिजाज से बाई जी लोग गाती, उस तरह दूसरों के लिए गाना आसान नहीं है। ये बड़ी लगन व परिश्रम के साथ संगीत का अभ्यास करती थी। गौहर जान की तरह सपाट तान बड़े गायक भी नहीं ले पाते थे। सिद्धेश्वरी देवी भक्ति संगीत आत्म विभोर होकर गाती थी।

जोहरा बाई के राग जोगिया के रेकार्ड, 'पिया के मिलन की आस, तथा रसूलन बाई की भैरवी की दुमरी- 'फूलगंदवा न मारो, लगत करेजवा में चोट' तथा 'रस के भरे तोरे नैन, नाही परत मोका चैन, और रंग देख जिया ललचाये' इन दुमरियों को सिद्धेश्वरी देवी व मोती बाई ने भी अपने निराले ढंग से गाया है। बेगम अख्तरी की- 'कोयलिया मत कर पुकार, करेजवा में लागे कटार', तथा 'मैं तो तोरे दामन लगी महाराज' जैसी दुमरियों में बोल बनाव की मोहक अदायगी की गिरफ्त से कौन छूट पाया है। राजाओं, महाराजाओं, आश्रयदाताओं को प्रसन्न रखने के लिए प्रयुक्त होने वाली दुमरी-चहारदीवारी से निकलकर उन्मुक्त स्वच्छन्द वातावरण में विचारण करने हेतु बेचैन रहने लगी और विभिन्न स्वरूपों से गुजरती हुई क्रमशः विकासोन्मुख हुई और दुमरी ने स्वतन्त्र रूप धारण कर लिया।

बनारसी परम्परा के दुमरी गायिकाओं की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह रही कि वे चारों पर अर्थात् ध्रुवपद धमार, ख्याल, दुमरी आदि गायन की विभिन्न शैलियों पर समान अधिकार रखती थी। बेगम अख्तरी, रसूलन बाई, सिद्धेश्वरी देवी, गिरिजा देवी आदि दुमरी गायिकायें विश्व विख्यात कलाकारों की श्रेणी में गिनी जाती हैं। ये सभी दुमरी गायन के साथ-साथ ख्याल गायन आदि पर भी अपना समान अधिकार रखती थी। भारतीय संगीत को अपने गायन से इन्होंने सजाया व संवारा। इन महिला गायिकाओं ने संगीत जगत में

ऐसे मानदंड स्थापित किये, जिन्हें तोड़ना या उनसे आगे जाना कठिन है। इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन संगीत को समर्पित कर दिया। उन्होंने अपने गायन व गायकी के माध्यम से मानव मनोभावों को प्रेरित किया और उन्हें नई दिशा दी। इन गायिकाओं ने अपने अथक परिश्रम द्वारा जहां संगीत को समृद्ध किया वही तुमरी शैली को जन साधारण से जोड़ने की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य भी किया। इसका परिणाम यह हुआ कि इस शैली के प्रति एक नकारात्मक सोच का जो नजरिया था कि इसे एक क्षुद्र प्रकृति का समझा जाता था, उसमें बदलाव आया और बड़े शास्त्रीय कलाकार भी मंच पर तुमरी की प्रस्तुति देने में नहीं हिचकिचाते। संगीत की तुमरी दादरा आदि विधाओं को बाजार से महफिलों तक एवं महफिलों से संगीत समारोहों तक का सफर इन गायिकाओं ने बड़ी शिद्दत के साथ पूरा किया, यह गौरव की बात है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. निबन्ध संगीत, लक्ष्मी नारायण गर्ग, लेख आचार्य वृहस्पति, तुमरी में सनातन सांगीतिक तत्त्व, पृ. सं. 12।
2. ख्याल गायन शैली विकसित आयाम, डा0 सत्यवती शर्मा, पंचशील प्रकाशन जयपुर पृ.सं. 71)
3. हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति, क्रमिक पुस्तक मालिका, भाग 4 (1979), पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे, प्रकाशक संगीत कार्यालय, हाथरस,
4. पृ.सं. 50)
5. Singh, Thakur Jaidev, Evolution of thumari, कलाभारती

6. तुमरी, तुमरी सम्मेलन पत्रिका, 1965, पृ. सं. 36।
7. नागर, अमृत लाल, ये कोठेवालिया, पृ. सं. 56।
8. दूबे, सुदामा प्रसाद, क्षितिज, संगीत मासिक (तुमरी अंक) जनवरी-फरवरी 1947, पृ. सं. 13।
9. सिंह, लावण्य कीर्ति, संगीत संजीवनी, पृ. सं. 48।
10. निबन्ध संगीत, श्री लक्ष्मी नारायण गर्ग, लेख- आचार्य वृहस्पति, तुमरी में सनातन सांगीतिक तत्त्व पृ. सं. 16।
11. ख्याल गायन शैली, विकसित आयाम, डा0 सत्यवती शर्मा, पृ. सं. 72।
12. हमारा आधुनिक संगीत- सुशील चौबे, पृ. सं. 91-92।
13. राय, डा0 विमल-तुमरी-संगीत (मासिक) अक्टूबर 1987, पृ. सं. 17।
14. भातखण्डे, संगीत शास्त्र, भाग-1, पृ. सं. 62।
15. भटनागर, हेम-हिन्दी साहित्य के श्रृंगार युग में संगीत, काव्य, पृ. सं. 161।
16. चौबे, डा0 सुनील कुमार- हमारा आधुनिक संगीत, पृ. सं. 112।
17. <http://en.wikipedia.org/wiki/thumari>.
18. Pohankar, sushila- Folkelemants in Thumari- Thumari: Tradition and Trends- Seminar papers, p. 76-
19. बिरजू महाराज की ध्वनि-मुद्रक सं. Splendours of the Kathak Maestro Birju Maharaj Emi-7 Supreme- Stus 02B 6187 Stereo-
20. तुमरी की उत्पत्ति, विकास एवं शैलियां, डा0 शत्रुघ्न शुक्ला, पृ.सं. 18।

20. बनारस तेरे रंग हजार, कमल नयन, पृ. सं. 4, भारत बुक सेन्टर, लखनऊ, 2011।
21. वही, पृ. सं. 95।
22. वही पृ. सं. 100।
23. वही पृ. सं. 101।
24. संगीत के घरानों की चर्चा, डा0 सुशील कुमार, चौबे, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, पृ. सं. 244।
25. मिश्र, शम्भूनाथ— सात सुर सत्ताईस दायरे, पृ. सं. 49।

Copyright © 2017, Dr. Jyoti Sinha. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.